श्रृंगारप्रकाशकार भोज का काल-निरूपण

मुकेश कुमार मिश्र[*]
mukeshsnk@gmail.com

सार

अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न, अपूर्व शास्त्रवैदग्ध्य, असाधारण योद्धा, महाप्रतापी शासक, विद्या एवं विद्वानों के महान् संरक्षक आदि बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी परमारवंशीय धाराधीश्वर महाराजाधिराज मध्यकालीन भारतीय इतिहास का वह अमरनायक है, जिनकी निर्मल यशः काया आज भी दिग् दिगन्तर में व्याप्त होती हुई इस धराधाम पर अजर-अमर रूप में विराजित है। परमारवंशीय शासकों के हीरकमणि इस इतिहासप्रसिद्ध महान् शासक के पूर्ववर्ती, समकालीन एवं परवर्तीकालीन ताम्रपत्रों, दानपत्रों, अभिलेखों, प्रशस्तियों, रचनाओं आदि के आधार पर उनका समय लगभग निर्धारित ही है, किन्तु शासनकाल की नियत कालावधि के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। भोज का शासनकाल ११वीं शताब्दी का माना जाता है - इस विषय में कोई विवाद नहीं है। किन्तु उनके साम्राज्य की अवधि क्या था? अर्थात् उन्होंने कब से कब तक अपना शासन संचालित किया? उनकी मृत्यु कब हुई? - ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनके विषय में कोई निश्चित मत स्थापित नहीं किया जा सकता है। फिर भी अभिलेखीय, साहित्यिक, ऐतिहासिक एवं विभिन्न आचार्यों के मतों एवं साक्ष्यों की समीक्षा के द्वारा उनकी शासनावधि के विषय में प्रचलित उक्त संशयात्मक तथ्यों का शमनकर वास्तविकता के समीप पहुँचने का प्रयास किया जा सकता है।

Keywords: भोज, श्रृंगारप्रकाश, सरस्वती कण्ठाभरण

महाराज भोज के कालनिर्धारण के लिए अभिलेखीय, ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं विभिन्न आचार्यों के मतों एवं साक्ष्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है –

१. अभिलेखीय साक्ष्य

इसके अन्तर्गत सीयक द्वितीय का हर्सोल अभिलेख, वाक्पतिमुञ्ज का मालवा से प्राप्त ताम्रपत्र, भोज का बंसवाड़ा ताम्रपत्र, बटमा ताम्रपत्र, मालवा से प्राप्त ताम्रपत्र, देपालपुर दानपत्र, धारा से प्राप्त सरस्वती मूर्त्ति, यशोवर्मा का कल्याण दानपत्र, यशोराज का तिलकवाङ ताम्रपत्र, जयसिंह का मान्धाता दानपत्र, उदयादित्य का उदयपुर प्रशस्ति, लक्ष्मणदेव का नागपुर प्रशस्ति, देवपाल और जयवर्मन द्वितीय का मान्धाता लेखादि प्रमुख हैं।

९४८ ई० का सीयक द्वितीय का हर्सोल अभिलेख परमारवंशीय प्रारम्भिक इतिहासविषयक जानकारी प्रदान करता है। इसी प्रकार वाक्पतिराज मुञ्ज का मालवा अर्थात् उज्जयिनी से प्राप्त दानपत्र में अपने पूर्ववर्त्ती शासकों यथा श्रीकृष्णराजदेव, श्री वैरिसिंहदेव, श्रीसीयकदेव, अमोघवर्ष अपर नामवाले वाक्पतिराजदेव का क्रमशः उल्लेख मिलता है। इस दानपत्र पर संवत् १०३१ भ्राद्रपद शुदि १४ (अर्थात्

[*] *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (तदर्थ), देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

९७५ ई० सन्) लिखित है। साथ ही यहाँ वाक्पतिराजदेव का स्वयं का हस्ताक्षर भी अंकित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दानपत्र वाक्पतिराज द्वितीय के शासक बनने के शीघ्र बाद ही जारी किया गया था।[१]

भोजकालीन अभिलेखों में प्रथमतः बाँसवाङा से प्राप्त भोज का ताम्रदानपत्र है।[२] यहाँ भोज द्वारा कोंकणविजय के उपलक्ष्य में दिये गये दान का वर्णन है। इस दानपत्र में भोज का क्रमशः अपने पूर्ववर्ती राजाओं सहित उल्लेख मिलता है। यथा – श्रीसीयकदेव, श्रीवाक्पतिराजदेव, श्रीसिन्धुराजदेव तथा श्रीभोजदेव। दानपत्र पर संवत् १०७६ माघ शुदि ५ उल्लिखित है। फ्लीट महोदय इस अंकित तिथि को जनवरी १०२० निर्धारित करते हैं। इस दानपत्र पर भोज का अपना हस्ताक्षर प्राप्त होता है।

बाँसवाड़ा के समान ही इन्दौर के बेटमा गाँव से प्राप्त भोज का बेटमा ताम्रदानपत्र है, जिस पर सीयक से लेकर भोजदेव तक का वंशानुक्रम लिखित मिलता है।[३] बाँसवाड़ा प्लेट में उल्लिखित 'कोंकणविजयपर्वणि' के स्थान पर कोंकणग्रहणविजयपर्वणि' पद के अंकित होने से प्रतीत होता है कि जहाँ बँसवाड़ा दानपत्र कोंकण विजय के उपलक्ष्य में था, वहीं बेटम दानपत्र का सम्बन्ध कोंकण को अपने साम्राज्य के अधिकारक्षेत्र में मिलाये जाने से था। इस दानपत्र के अन्त में सम्वत् १०७६ भाद्रपद शुदि १५ अंकित है, जिसका निर्धारण ४ सितम्बर १०२० किया गया है। इस पर भोज का स्वकीय हस्ताक्षर मिलता है। उपर्युक्त दोनों ही ताम्रदानपत्रों के आधार पर यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि परमारवंशीय शासकों में भोज की गणना या क्रम सिन्धुराज के बाद आता है अर्थात् भोज ने सिन्धुराज के उपरान्त परमारवंशीय शासन की बागडोर सम्भाला और कम से कम १०२० ई० में वे शासक के रूप में विद्यमान थे।

उज्जैन के पवित्र पञ्चकोशी से जुड़े नागद्रह अर्थात् सम्प्रति नागझड़ी से प्राप्त भोज के इस दानपत्र में अपने वंशवर्ती शासकों की चर्चा के साथ-साथ दो तिथियों का उल्लेख मिलता है।[४] पहला उल्लेख अपने देश में स्थित नागद्रह के पश्चिमी भागवाले वीराणक नामक गाँव को दान देने के समय अर्थात् संवत् १०७८ माघवदी तृतीया रविवार को सूर्य के उत्तररायण प्रारम्भ होने के समय का है और दूसरा जब इस दानपत्र को अभिलिखित किया गया, जहाँ सम्वत् १०७८ चैत्रसुदि १४ यह तिथि अंकित

---

१ **दी इण्डियन एण्टिक्वेरी**, भाग-१९, पृ० ३४५-३५३; भाग-६, पृ० ५१-५२.

२ **ए०इ०**, भाग-११, पृ० १८२-१८३.

३ **ए०इ०**, भाग-१८, पृ० ३२२-३२४.

४ **वही**, भाग-६, पृ० ५३-५४.

है अर्थात् फरवरी १०२२ ई० सन्। साथ ही इस पर भोज का अपना हस्ताक्षर भी प्राप्त होता है। इस दानपत्र के अनुसार शासक के रूप में १०२१-२२ ई० में भोज की स्थिति सुनिश्चित दिखायी पड़ती है।

इन दानपत्रों के साथ ही इन्दौरस्थित देपालपुर नामक स्थान से प्राप्त वच्छल नामक ब्राह्मण को दिये गये किरिकैका ग्रामगत भूमिदान का भी उल्लेख मिलता है।[१] इस दान के दोनों पत्रों पर भोज की हस्ताक्षरसहित तिथि अंकित मिलती है। तिथि के रूप में यहाँ सम्वत् १०७९ चैत्र सूदि १४ अर्थात् १०२३ ई० सन् का प्राप्त होना – इस बात का संकेत करता है कि भोज १०२३ ई० में अपना शासनकार्य संचालित कर रहे थे।

भोजकालीन इन दानपत्रों के अतिरिक्त उन दानपत्रों का उल्लेख भी आवश्यक है, जिसे इतिहासकारों ने भोज के सामन्तों का स्वीकार किया है, उनमें एक बड़ौदा प्रान्त के तिलकवाङ नामक स्थान से प्राप्त दानपत्र है।[२] इस पत्र से स्पष्ट होता है कि श्रवणभद्रवंश के राजा नरोत्तर सुरादित्य ने कन्नौज में जाकर राजा भोज के प्रतिद्वन्द्वी शत्रुओं को मारकर उनकी सहायता की थी। सुरादित्य के पुत्र संगमखेट माण्डाला के राजा यशोराज ने दिनकर नामक किसी व्यक्ति को बिलहुज नामक ग्राम एवं घण्टापल्ली ग्राम की १०० एकड़ भूमि विक्रम संवत् ११०३ अर्थात् १०४७ में दान दी थी। विद्वानों की राय है कि यशोराज सम्भवतः भोज का ही सामन्त था। इस आधार पर १०४७ ई० सन् में भोज की विद्यमानता सूचित होती है।

इसी प्रकार नासिक जिले के कल्याण नामक स्थान से प्राप्त भोजदेव के सामन्त यशोवर्मा के दानपत्र[३] पर भोज एवं उनके पूर्वजों की वंशावली 'प्रमार' नाम से उल्लिखित है, जो परमार शब्द का ही भ्रष्टरूप माना जाता है। यहाँ भोज का विवरण कर्णाट, लाट, गुजरात, चेदि और कोंकण राजाओं के विजेता के रूप में मिलता है। यद्यपि इसमें तिथि अंकित नहीं है तथापि स्वर्गीय रखालदास बनर्जी जैसे इतिहासकार इसकी तिथि संवत् १११३ अर्थात् १०५६ ई० से पूर्व अनुमानित करते हैं। यदि इस तिथि को सत्य माना जाए तो १०५६ ई० में भोज की उपस्थिति सुनिश्चित मानी जा सकती है।

भोजकालीन एक प्रबल अभिलेखीय साक्ष्य वाग्देवी की वह प्रतिमा है[४], जिसे धार के शरदासदन में भोज ने स्थापित कराया था और जो सम्प्रति ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है।

---

१ रेउकृत **राजा भोज** में परिशिष्ट, पृ० ६.

२ (i) **चम्पूरामायण का साहित्यिक परिशीलन**, पृ० १८.
(ii) **ए०इ०**, भाग-१८, पृ० ३२०.

३ रेउकृत **राजा भोज** में परिशिष्ट, पृ० १३.

४ **ए०इ०**, भाग-१८, पृ० ३२०.

सरस्वतीप्रतिमा के पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि शाम्भवी शक्ति से सम्पन्न वाग्देवी की इस प्रतिमा को महि के पुत्र मणथल ने संवत् १०९१ अर्थात् १०३४-३५ में निर्मित कराया था। यहाँ अंकित तिथि इस बात को प्रामाणिकता प्रदान करती है कि १०३४-३५ ई० में भोज ने धारानगरी को सुशोभित किया था।

भोजकालीन अभिलेखों की तरह परवर्ती भोजकालीन अभिलेख भी उनके शासनकाल की उत्तर अवधि को निर्धारित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है। भोज के परवर्ती प्रायः उपलब्ध अभिलेखों से उसके उत्तराधिकारी के रूप में उदयादित्य का उल्लेख मिलता है। किन्तु मध्य प्रान्त के निमार जिले से सटे हुए नर्मदा नदी के समीपवर्ती मान्धाता नामक स्थान से प्राप्त जयसिंहदेव का ताम्रदानपत्र उसे भोज का उत्तराधिकारी सिद्ध करता है।[१] इस दानपत्र में परमारवंशीय पूर्ववर्ती शासक श्रीवाक्पतिराजदेव, श्रीसिन्धुराजदेव और श्रीभोजराजदेव का उल्लेख करने के बाद 'परमभट्टारक-महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीजयसिंहदेव' का उल्लेख मिलता है। इस पर संवत् १११२ आषाढवदि १३ की तिथि अंकित मिलती है। साथ ही यहाँ श्रीजयसिंहदेव का स्वकीय हस्ताक्षर भी प्राप्त होता है। उक्त अंकित तिथि के आधार पर आचार्यों ने १०५५-५६ ई० को भोज के शासनकाल की उत्तरी सीमा (मृत्यु काल भी) स्वीकारते हैं।

परवर्ती भोजकालीन अभिलेखों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उदयपुर प्रशस्ति है।[२] भिलसा (ग्वालियर) के समीप उदयपुर नामक स्थान के नीलकण्ठेश्वर मन्दिर के एक शिलापट्ट पर उत्कीर्ण इस प्रशस्ति में परमारवंश की उत्पत्ति से लेकर भोज के उत्तराधिकारी उदयादित्य के शासनकाल तक प्राप्त होनेवाले शासकों के नाम एवं उपलब्धियों का यथाक्रम पूर्ण विवरण मिलने से यह परमारवंश के इतिहास को ज्ञात करने का सर्वप्रमुख साधन है। जिस शिवमन्दिर पर यह प्रशस्ति उत्कीर्ण है उसे या तो भोज के उत्तराधिकारी उदयादित्य ने अथवा उसके तुरन्त बाद के शासक ने बनवाया होगा। इस प्रशस्ति में प्रथमतः वशिष्ट की गौरक्षाहेतु अग्निकुण्ड से परमारों की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। अनन्तर परमार वंश की उपलब्धियों के साथ परमारवंश के शासक का उल्लेख मिलता है। वे हैं - उपेन्द्रराज, श्रीवैरिसिंह, श्रीसीयक, श्रीवाक्पति, वैरिसिंह (वज्रस्वामिन्), श्रीहर्षदेव, श्रीवाक्पतिराजदेव, उनका अनुज श्रीसिन्धुराज, श्रीभोजराज और उदयादित्यदेव। इस प्रशस्ति में हूणराज को पराजित करनेवाले सिन्धुराज के पुत्र भोजराज की महिमा का स्तवन करते हुए उनके साम्राज्य-विस्तार, उनकी कविराज उपाधि, चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोग्गल, भीम, कर्णाट, लाट एवं गुर्जर के राजाओं तथा तुरुष्कों पर

---

[१] **ए०इ०**, भाग-३, पृ० ४८-५०.

[२] **वही**, भाग-१, पृ० २३३-२३६.

विजय, केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर, काल, अनल और रुद्र के मन्दिर निर्माता, उनका शिवभक्त होना आदि का वर्णन करता है, वहीं उनके अवसान के साथ उनके शत्रुओं तथा पैतृक शत्रुओं द्वारा धारा नगरी में फैलाये गये व्याप्त घने अन्धकार को भी सूचित करता है, जिसका अन्त उदयादित्य के द्वारा किया गया। भोज के अवसान के समय व्याप्त अन्धकार एवं उदयादित्य द्वारा उस अन्धकार को समाप्त किये जाने का वृत्तान्त भोज के शासनकाल के अन्त में उनके पैतृक एवं परम्परागत शत्रुओं के संघ द्वारा धारा पर किये गये आक्रमण एवं धारा नगरी के विनाश को सूचित करता है, जिसकी सूचना हमें अन्य ऐतिहासिक एवं साहित्यिक स्रोतों से भी मिलती है। सम्भव है कि भोज के उत्तराधिकारी उदयादित्य ने अपने शौर्य एवं बल से धारागनरी के यश को पुनः स्थापित किया हो। उदयपुर प्रशस्ति में मान्धाता दानपत्र के दाता तथा भोज के बाद स्वयं को उनका उत्तराधिकारी घोषित करनेवाले जयसिंहदेव का उल्लेख नहीं मिलता है। यह अभिलेख विक्रम संवत् १११६ एवं शक संवत् ९८१ अर्थात् ९५९ ई० का माना जाता है।

उदयपुर प्रशस्ति के साथ ही नागपुर शिलालेख भी परमारवंशीय इतिहास की जानकारी का एक प्रमुख साधन है।[१] परमारवंशीय शासक लक्ष्मदेव के इस प्रशस्ति लेख में अर्बुद (आबू) पर्वत पर रहनेवाले वशिष्ट की नन्दिनी नामक गाय को विश्वामित्र द्वारा ले जाया जाना तथा उस कामधेनु की मुक्ति के लिए पवित्र अग्नि से परमार की उत्पत्ति तथा उनकी सहायता से नन्दिनी को वापिस लाया जाना आदि परमार वंश की उत्पत्ति की कथा के साथ-साथ इस वंश के प्रथम शासक वैरिसिंह से लेकर लक्ष्मदेव तथा उनके भाई नरवर्मनदेव का उल्लेख मिलता है अर्थात् वैरिसिंह, सीयक, मुञ्जराज, सिन्धुराज, उदयादित्य, लक्ष्मदेव और उनके भाई नरवर्मदेव का विवरण प्राप्त होता है। इस प्रशस्ति में लक्ष्मदेव के स्थापत्यकार लक्ष्मीधर द्वारा बनवाये गये मन्दिर और उस मन्दिर को स्वयं राजा द्वारा रचित स्तुतियों एवं गीतों से अलंकृत किया गया है। साथ ही इस पर संवत् ११६१ अर्थात् ११०४-५ की तिथि भी अंकित है। भोज के साम्राज्य के विषय में यहाँ प्राप्त होनेवाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जानकारी भोज के शासनकाल के अन्त में घटित होनेवाले विनाश की सूचना है, जिसके कारण भोज की सम्प्रभुता नष्ट हो गयी थी एवं साम्राज्य पर शत्रुओं का अधिकार हो गया, जिसे उनके उत्तराधिकारी उदयादित्य ने मुक्त कराकर वहाँ सुशासन स्थापित किया।

अन्ततः परमारवंशीय शासक देवपाल और जयवर्मन द्वितीय का मध्यप्रान्त के निमार जिले से जुड़े हुए नर्मदा नदी के समीपस्थ मन्धाता स्थान के सिद्धेश्वर मन्दिर के निकट से प्राप्त दानपत्र तथा मन्धाता द्वीप के विपरीत में स्थित नर्मदा नदी के दक्षिणी भाग गोदरपुर से प्राप्त दानपत्र जिस पर

---

[१] **ए०इ०**, भाग-२, पृ० १८२-१८८.

क्रमशः विक्रम संवत् १२८२ अर्थात् १२२४ ई० भद्रसुदि १५ एवं संवत् १३१७ ज्येष्ठ सुदि ११ अर्थात् 7 नवम्बर १२६० ई० अंकित है।[१] दोनों ही शासक यहाँ अपने से पूर्ववर्ती मालवा प्रान्त के शासकों की नामवली भोजदेव से आरम्भ करते हैं तथा उनके शासन के अन्त में शत्रुओं द्वारा उनकी कीर्त्ति को नष्ट करने तथा उनके उत्तराधिकारी उदयादित्य द्वारा उनकी कीर्त्ति को पुनःस्थापित करने की बात करते हैं। देवपाल के अभिलेख में जहाँ भोजदेव, उदयादित्य, नरवर्मन यशोवर्मन, अजयवर्मन, विन्ध्यवर्मन, सुभटवर्मन, अर्जुन (अर्जुनवर्मन), देवपाल का उल्लेख मिलता है, वहीं जयवर्मन द्वितीय के लेख में इन शासकों के अतिरिक्त देवपाल के पुत्र जैतुंगिदेव (१२४३ ई०) तथा उनके छोटे भाई जयवर्मन द्वितीय (१२६०-६१ ई०) का उल्लेख मिलता है। इन दोनों ही अभिलेखों का आरम्भ अपने पूर्ववर्ती शासक भोजदेव से होता है। यहाँ भोजदेव के शासनकाल के अन्त में उनकी कीर्त्ति को नष्ट करनेवाली घटित घटनाओं तथा उदयादित्य द्वारा कीर्त्ति को फिर से स्थापित करने की सूचना मिलती है। इससे भी स्पष्ट होता है कि भोज के बाद उदयादित्य ने ही शासन की बागडोर संभाली थी। यहाँ भी जयसिंहदेव का उल्लेख नहीं मिलता है।

इसी प्रकार परवर्ती परमारवंशीय शासक महाराजा यशोवर्मदेव और महाकुमार लक्ष्मीवर्मदेव के क्रमशः विक्रम संवत् ११९१ और १२०० ई० के ताम्रदानपत्र एवं महाराजा जयवर्मदेव के ताम्रदानपत्र (सम्भवतः विक्रम संवत् ११९२ और १२०० के मध्य का) में पूर्वजशासकों का उल्लेख उदयादित्य के साथ आरम्भ होता है[२] और इसी क्रम में नरवर्मदेव, यशोवर्मदेव, जयवर्मदेव तथा लक्ष्मीवर्मदेव की चर्चा मिलती है। इन अभिलेखों में भी जयसिंहदेव का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

उपर्युक्त अभिलेखों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भोज के शासन के अन्त में उनके शत्रुओं ने सामूहिक आक्रमणकर उनकी कीर्ति को ध्वंस कर दिया था, किन्तु किसी भी अभिलेख से उनकी मृत्यु के विषय में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। जहाँ तक भोज के पश्चात् जयसिंहदेव एवं उदयादित्य के साम्राज्यारोहण या उत्तराधिकार का प्रश्न है तो यह भी सम्भव है कि भोज की जर्जर स्थिति या दयनीय दशा को देखते हुए उनके पुत्रों में से एक जयसिंहदेव ने उनके जीवित रहते ही अपने को शासक घोषित कर दिया हो तथा दानपत्र भी वितरित कर दिया हो, जैसा कि गुप्तसाम्राज्य में चन्द्रगुप्त प्रथम के काल में समुद्रगुप्त के भाई काच और अन्य परवर्ती गुप्त शासकों के पुत्रों में यह प्रवृत्ति देखी गयी थी। किन्तु जयसिंहदेव की निश्शक्तता के कारण उनका साम्राज्य अल्पकालीन रहा हो और अन्ततः भोज के अन्य पुत्र उदयादित्य अपने साम्राज्य को पूर्णतः

[१] **दी इण्डियन एण्टिक्वेरी**, भाग-९, पृ० १०८-११३; १२०-१२३.

[२] **दी इण्डियन एण्टिक्वेरी**, भाग-१९, पृ० ३५०-३५१; ३५२-३५३.

शत्रु मुक्तकर खोई हुई कीर्त्ति को पुनर्स्थापित करने में सफल रहे हों। सम्भव है कि भोज की मृत्यु जयसिंहदेव के काल में ही हुई हो।

२. ऐतिहासिक साक्ष्य

विभिन्न स्रोतों से प्राप्त साधनों से स्पष्ट होता है कि परमारवंशीय शासकों के परम्परागत शत्रुओं में कल्याणी के चालुक्य, गुजरात के चालुक्य एवं त्रिपुरी के कलचुरि अर्थात् चेदि राजवंश प्रमुख हैं। यद्यपि त्रिपुरी के कलचुरि वंश के शासक गांगेयदेव के साथ परमारवंशी शासक भोज ने मैत्री–सम्बन्ध स्थापित किया था तथा चोल शासक राजेन्द्र प्रथम के साथ मिलकर इन शासकों ने कल्याणी के चालुक्य शासकों के विरुद्ध एक त्रिगुट संघ का निर्माण किया था। किन्तु शीघ्र ही कलचुरि गांगेयदेव के पुत्र लक्ष्मीकर्ण के समय पारम्परिक शत्रुता जाग उठी तथा उसने गुजरात के चालुक्यों के साथ संघ बनाकर भोज के शासनकाल के अन्त में उनकी कीर्त्ति को नष्ट कर दिया एवं शत्रुसंघ के द्वार धारा नगरी को लूट लिया गया और सम्भवतः इस विनाश के कारण भोज संभल नहीं पाये, बीमार पड़े और दीर्घकालीन रुग्णावस्था में अन्ततः मृत्युगति को प्राप्त हो गये।

पारम्परिक शत्रुओं में प्रथमतः कल्याणी के चालुक्यवंशीय शासकों के साथ परमारवंशीय शासकों के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं। परमारवंशीय शासक मुञ्ज ने कल्याणी के शासक तैलप द्वितीय को छह बार पराजित किया था, किन्तु सातवीं बार तैलप द्वितीय के हाथों उसका दुखद अन्त हुआ। मुञ्ज के बाद उसका छोटा भाई सिन्धुराज गद्दी पर बैठा, जिसने अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए तैलप द्वितीय के उत्तराधिकारी सत्याश्रय (९९७–१००८) के अन्य युद्ध में व्यस्तता की स्थिति में उस पर आक्रमण कर उन प्रदेशों को जीत लिया, जिसे तैलप ने उसके भाई से जीता था।[१] चालुक्य शासक जयसिंह द्वितीय के काल (१०१५–१०४३) में मालवा के परमार शासक भोज ने चोल शासक राजेन्द्र प्रथम एवं कलचुरि शासक गांगेयदेव के साथ एक त्रिगुट संघ बनाकर उसके विरुद्ध आक्रमण किया तथा लाट और कोंकण प्रदेश पर अधिकार कर प्रारम्भिक सफलताएँ अर्जित की, किन्तु बेलगाँव अभिलेख के अनुसार शीघ्र ही जयसिंह द्वितीय ने विजित प्रदेशों से शत्रुओं को खदेड़कर अपना आधिपत्य पुनर्स्थापित कर लिया।[२] जयसिंह द्वितीय के उत्तराधिकारी सोमेश्वर प्रथम (१०४३–१०६८) ने परमार राजधानी धार नगरी पर आक्रमण कर वहाँ के राजा भोज को आत्मरक्षार्थ अन्यत्र शरण लेने के लिए विवश कर दिया। चालुक्यों ने धार को जला दिया तथा माण्डव पर

---

[१] **प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति**, पृ० ६४३.

[२] दुबे, हरिनारायण, **दक्षिण भारत का इतिहास**, पृ० १७८.

अधिकार कर लिया। नागई लेख (१०५८ ई०) में सोमेश्वर के इस विजय की चर्चा है।[१] 'विक्रमांकदेवचरित' से इस बात की सूचना मिलती है कि सोमेश्वर ने धारा पर आक्रमण किया तथा भोज पराजित हो नगर छोड़कर भाग गया।[२] भोज के शासनकाल के अन्तम चरण में सांघातिक आक्रमण करनेवाले संघ में सामेश्वर प्रथम भी सम्मिलित था। कल्याणी के सोमेश्वर प्रथम, गुजरात के चालुक्यनरेश भीम प्रथम तथा कलचुरि चेदिवंशी शासक लक्ष्मीकर्ण के सामरिक संघ ने मालवा पर चारों ओर से आक्रमण कर परमार शासन का विध्वंस कर डाला और धारानगरी पर अधिकार स्थापित कर लिया। इस आक्रमण से होनेवाले भयंकर विनाश एवं क्षति के कारण अथवा युद्धक्रम में ही भोज बीमार पड़ा और अन्ततः मृत्यु को प्राप्त हो गया। किन्तु शीघ्र ही मालवा साम्राज्य के बंटवारे को लेकर उत्पन्न हुए त्रिगुटीय संघ के तनाव को देखते हुए भोज के पुत्र जयसिंह ने सोमेश्वर प्रथम की सहायता से मालवा के राजसिंहासन को प्राप्त किया।[३] सोमेश्वर प्रथम के पश्चात् सोमेश्वर द्वितीय ने गुजरात के चालुक्य शासक कर्ण की सहायता से भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह को पराजित कर उसे अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया, किन्तु शीघ्र ही चोल और चौहान की सहायता से उदयादित्य स्वतन्त्र शासक के रूप में सिंहासन पर बैठा। सोमेश्वर के उत्तराधिकारी विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६-११२६) ने चोलों और चौहानों की सहायता से गद्दी पर बैठे जयसिंह के उत्तराधिकारी उसके भ्राता उदयादित्य के शासनकाल में उस पर आक्रमण कर उसकी शक्ति का विनाश कर डाला तथा धारा नगरी को भस्म कर दिया। रायबागलेख से इस बात का पता चलता है।[४] उदयादित्य के बाद उनके तीन पुत्रों में उत्तराधिकार का संघर्ष छिड़ जाने पर विक्रमादित्य ने जगद्देव का समर्थनकर उसे गद्दी पर बैठाया।[५] पर शीघ्र ही जगद्देव के भाई नरवर्मन ने उससे गद्दी छीन ली, फलतः जगद्देव को चालुक्य दरबार में शरण लेनी पड़ी।

कलचुरि शासक भी परमारों के पारम्परिक शत्रु थे। परमार शासक मुञ्ज ने कलचुरि शासक युवराज द्वितीय के काल में उस पर आक्रमण कर उसकी शक्ति, प्रतिष्ठा तथा राजधानी को ध्वस्त कर दिया तथा कुछ समय तक त्रिपुरी पर अधिकार स्थापित कर लिया। भोज ने अपने शासनकाल में कलचुरि शासक गांगेयदेव (१०१९-१०४१) के साथ मैत्रीभाव का परिचय दिया, किन्तु भोज के

---

१ **प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति**, पृ० ५८८.

२ **विक्रमांकदेवचरित**, १/९१-९४.

३ दुबे, हरिनारायण, **दक्षिण भारत का इतिहास**, पृ० १८०.

४ **प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति**, पृ० ६४७.

५ **वही।**

शासन के उत्तर में कलचुरि साम्राज्य संभालनेवाले गांगेयदेव के उत्तराधिकारी कर्णदेव या लक्ष्मीकर्ण (१०४१–१०७०) ने गुजरात के चालुक्य शासक भीम के साथ संघ बनाकर परमार शासक भोज पर आक्रमण किया तथा उसकी राजधानी धार को लूट लिया एवं भोज की कीर्ति को नष्ट कर दिया। कालान्तर में लक्ष्मदेव परमार ने त्रिपुरी को लूटकर कलचुरियों से इस अपमान का बदला लिया था।

परमार राजवंश के तीसरे पारम्परिक शत्रु गुजरात के चालुक्य शासक थे। परमारशासक सिन्धुराज के समय चालुक्य शासक चामुण्डराज (९९५–१००८ ई०) ने उसके विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी। १४वीं शताब्दी के लेखक जयसिंह देव सूरी के कथन में विश्वास किया जाए तो सिन्धुराज की मृत्यु गुजरात नरेश चामुण्डराज के साथ युद्ध करने में हुई थी – "चामुण्डराज ने समुद्र की भाँति उन्मत्त सिन्धुराज को युद्ध में मार डाला।" लेखक के अनुसार यह समय १०६६ विक्रम संवत् से कुछ पूर्व का रहा था। सिन्धुराज के बाद भोज शासक बना तथा उसने सिन्ध अभियान में व्यस्त चालुक्यशासक भीमप्रथम (१०२२–१०६४) पर आक्रमण कर सफलता प्राप्त की। फलतः भीम प्रथम ने कलचुरि शासक लक्ष्मीकर्ण के साथ मिलकर एक संघ बनाया तथा लक्ष्मीकर्ण के नेतृत्व में मालवा पर चारों ओर से आक्रमण कर धारा नगरी को ध्वस्त कर दिया एवं भोज के प्रताप को गर्त में मिला दिया। इसी बीच भोज बीमार पड़ा और कुछ अवधि के बाद मृत्यु को प्राप्त हो गया। धारा नगरी से लूट में प्राप्त सम्पत्ति के बँटवारे के प्रश्न पर भीम प्रथम एवं लक्ष्मीकर्ण का संघ टूट गया तथा भीम ने इस बीच लक्ष्मीकर्ण को भी परास्त किया। भीम के उत्तराधिकारी निर्बल कर्ण (१०६४–९४) के काल में परमार उदयादित्य ने सौराष्ट्र पर आक्रमण कर उसे परास्त किया था, किन्तु वह शीघ्र ही संभल गया। कर्ण के उत्तराधिकारी जयसिंह सिद्धराज (१०९४–११९३) ने परमार शासक नरवर्मा को परास्त किया था तथा उसके पुत्र यशोवर्मा के राज्यकाल में उसकी राजधानी को लूट लिया और परमारशासक को एक पिंजरे में बन्दी बनाकर अन्हिलवाङा ले आये।[१]

इसके अतिरिक्त इतिहासकारों का यह मत है कि १००९ ई० में महमूद के विरुद्ध हिन्दूशाही राजा के सहायतार्थ भेजे गये सैनिक सहायता के रूप में परमारशासक भोज ने भी अवदान दिया था।

इन ऐतिहासिक विवरणों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि –

१. १००६–०८ के मध्य सिन्धुराज की मृत्यु के उपरान्त भोज ने परमार राजवंश की सत्ता संभाली थी।

[१] चौधरी, राधाकृष्ण, **प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास**, पृ० ५४४.

२. शत्रु–संघ द्वारा पराजित होने के पश्चात् भोज के पुत्रों में उत्तराधिकार के प्रश्न पर परस्पर संघर्ष हुए तथा आरंभ में जयसिंह ने अपने पारम्परिक शत्रुओं की सहायता से उनकी अधीनता में स्वयं को शासक घोषित कर दिया, किन्तु शीघ्र ही उसके भाई उदयादित्य ने परमार सिंहासन पर अधिकार कर लिया और वह परमारवंश की खोयी प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने में सफल रहा। सम्भावना है कि एक ओर मालवा का महाविनाश एवं दूसरी ओर उत्तराधिकार का संघर्ष तथा शत्रुओं की अधीनता में जयसिंह के शासक घोषित करने से परमार साम्राज्य की अनिश्चितता के भयंकर दंश को सहने में असमर्थ भोज बीमार पड़ा हो तथा कुछ वर्ष बाद वे दिवंगत हो गये हों।

३. साहित्यिक साक्ष्य

साहित्यिक ग्रन्थों के अध्ययन से भी भोज के काल–निर्धारण में सहायता मिलती है–

१. वाक्पतिराज मुञ्ज सिन्धुराज का ज्येष्ठभ्राता एवं भोजराज का चाचा था। इनके दरबार में अपने जीवन का अन्तिम चरण व्यतीत करने वाले तथा वहीं 'पिंगलछन्दसूत्र' पर 'मृतसञ्जीवनीटीका' की रचना करनेवाले हलायुध, दशरूपककार धनञ्जय, अवलोककार धनिक, 'पाईअल्च्छी' एवं 'तिलकमञ्जरी' के प्रणेता धनपाल, 'सुभाषितरत्नसन्दोह' के रचयिता जैनाचार्य अमितगति आश्रय पाते थे।[१] हलायुध, धनञ्जय एवं धनिक ने अपने ग्रन्थों में वाक्पतिमुञ्ज का अनेकशः और नामशः उल्लेख किया है। धनपाल ने अपनी कृति 'पाइअलच्छी' में १०२९ विक्रम संवत् का प्रयोग करते हुए कहा है कि इस समय राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेड को मालवा के परमार शासक के आक्रमण के द्वारा लूट लिया गया।[२] लगभग ठीक इसी समय अर्थात् १०३१ विक्रम संवत् का प्राप्त वाक्पतिराजमुञ्ज का अभिलेख इस बात की ओर संकेत करता है कि 'पाइअलच्छी' में जिस मालव–शासक की ओर संकेत किया गया था, वह वाक्पतिराजमुञ्ज रहा हो, जो शीघ्र ही राजसिंहासन पर आरुढ़ हुआ था। इसी प्रकार अमितगति ने अपनी रचना 'सुभाषितरत्नसन्दोह' में इसकी रचना विक्रम संवत् १०५० अर्थात् ९९३–९४ ई० सन् बतलाते हुए कहा है कि यह वाक्पतिमुञ्ज के काल में निर्मित हुआ था।[३] दूसरी ओर मुंज को बन्दी बनाकर उसकी हत्या करने वाले चालुक्य शासक तैलप द्वितीय की मृत्यु शक संवत् ९१९ अर्थात् ९९७–९८ ई० माना जाता है।[४] इस आधार पर मुञ्ज का

---

[१] **ए०इ०**, भाग–१, पृ० २२७.

[२] **वही**, भाग–१, पृ० २२६.

[३] **दि इण्डियन एण्टिक्वेरी**, भाग–६, पृ० ५१.

[४] **ए०इ०**, भाग–१, पृ० २२८.

मृत्युकाल अधिक से अधिक ९९७ ई० माना जा सकता है। इस प्रकार मुञ्ज का शासनकाल ९७३–९९७ ई० सन् रहा होगा। अतः स्पष्ट है कि भोज इसके परवर्ती रहे होंगे।

२. 'नवसाहसाङ्कचरित' के प्रणेता पद्मगुप्त मुञ्ज एवं सिन्धुराज की राजसभा को सुशोभित करते थे। उन्होंने सिन्धुराज के कहने पर ही अपने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इस ग्रंथ के अनुसार सिन्धुल मुञ्ज का छोटा भाई था तथा उसने मुञ्ज के बाद राज की बागडोर संभाली थी।[१] अधिकांश स्रोत भी इस बात का समर्थन करता है। 'नवसाहसाङ्कचरित' से इस बात की पुष्टि होती है कि पद्मगुप्त ने अपनी इस कृति को कम से कम सिन्धुल के शासन के सात अथवा आठ वर्ष के बाद पूर्ण किया था।[२] इस आधार पर पद्मगुप्त ने अपनी इस कृति को १००३–१००५ में पूर्ण किया होगा। इस कृति में मुञ्ज एवं सिन्धुराज का विस्तृत विवेचन मिलता है, किन्तु भोज का उल्लेख नहीं मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि इस कृति की रचना के समय भोज राजसिंहासन के लिए अनुपयुक्त अर्थात् नाबालिग रहा होगा। सिन्धुल का उत्तराधिकारी बनने में उसे कुछ वर्ष अवश्य लगे होंगे। यदि 'नवसाहसाङ्कचरित' की रचना १००३–०५ में स्वीकार की जाए तो कहा जा सकता है कि भोज का राज्यारोहण काल १००५ के बाद ही रहा होगा। १४वीं शताब्दी के लेखक जयसिंहदेव सूरि के कथन में विश्वास किया जाए तो सिन्धुराज की मृत्यु विक्रम सम्वत् १०६६ से कुछ पूर्व ही गुजरातनरेश सोलंकी चामुण्डराज के साथ युद्ध करने में हुई थी।[३] इस आधार पर भी सिन्धुराज का शासन (९९७–९८ से १००६–०७) ९–१० वर्ष ही ठहरता है, जो पद्मगुप्त के कथन की प्रामाणिकता को ही पुष्ट करता है।

३. भोज की रचनाओं में 'राजमृगाङ्ककरण' एक ज्योतिषविषयक रचना है। यहाँ इस ग्रंथ के रचनाकाल के विषय में एक श्लोक मिलता है, जो यह सिद्ध करता है कि शक संवत् ९६४ अर्थात् १०४२ ई० में इसकी रचना हुई थी।[४] अतः स्पष्ट है कि १०४२ ई० में भोज सिंहासनासीन थे।

४. महमूद गजनवी के साथ भारत आये अबू रेहान अलबरूनी ने लिखा है कि जब वह १०३० ई० में 'किताबुलहिन्द' की रचना कर रहा था, उस समय भोजदेव मालवा और धार पर शासन कर रहे थे।[१] स्पष्ट है कि १०३० ई० में भोज सिंहासनारूढ़ थे।

---

[१] **नवसाहसाङ्कचरित**, १/७; ११/९८.

[२] **ए०इ०**, भाग–१, पृ० २३०.

[३] **चम्पूरामायण का साहित्यिक परिशीलन**, पृ० ९.

[४] (i) **दी इण्डियन एण्टिक्वेरी**, भाग–६, पृ० ५१.

(ii) शाको वेदर्तुनन्दनोरविघ्नो माससंयुतः।
अधो देवान्वितो द्विस्थस्त्रिवेदघ्नस्तयोर्हृतः।। – **राजमृगाङ्क**, श्लोक–२, काणे, **संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास**, पृ० ३५२ में उद्धृत।

५. महाकाव्य शैली में कल्याणी के चालुक्यसम्राट् विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६–११२६ ई०) के जीवन और कार्यों का निरूपण करने वाले काश्मीरी कवि विल्हणरचित 'विक्रमाङ्कदेवचरित' में इस बात का विवेचन है कि चालुक्यशासक सोमेश्वर प्रथम (१०४० या ४२ से १०६७ या ६९) ने धारा पर आक्रमणकर उसे ध्वस्त कर दिया था, जिससे भोज को भागकर अन्यत्र शरण लेनी पड़ी थी। विल्हण ने अपने महाकाव्य के नायक के पिता के द्वारा किये गये इस महान् कार्य की प्रशंसा की है।[२] जहाँ तक भोज की मृत्यु का प्रश्न है तो इस सन्दर्भ में 'विक्रमांकदेवचरित' में उल्लिखित यह कथन कि धारानगरी ने मानो द्वार पर बैठकर बोलते हुए कबूतरों के द्वारा विल्हण से कहा कि राजा भोज की तुलना दुष्ट राजगण नहीं कर सकते। दुःख है कि तुमने स्वयं उनका साक्षात्कार क्यों नहीं किया।[३] इस कथन के आधार पर वुह्लर का विचार है कि जब विल्हण अपनी यात्रा के क्रम में मध्य भारत पहुँचा उस समय भोज जीवित था, परन्तु किसी कारणवश वे उनसे नहीं मिल सके – इसी का उन्हें दुःख था।[४] यदि इस कथन को सत्य माना जाए तो भोज की मृत्यु १०६२ ई० के बाद होनी चाहिए क्योंकि इसी वर्ष विल्हण कश्मीर चले गये थे।

६. १२वीं शताब्दी की रचना 'राजतरंगिणी' में इसके रचयिता काश्मीरी कवि कल्हण ने प्रसंगानुकूल विवेचन करते हुए कहा है कि उस समय विद्वानों में श्रेष्ठ राजा भोज और काश्मीर के क्षितिपति अपने दानोत्कर्ष के लिए लोकविश्रूत थे, दोनों ही समान रूप से कवियों के आश्रयदाता थे।[५] यहाँ उल्लिखित 'तस्मिन्क्षणे' का तात्पर्य बूह्लर उस समय अर्थात् १०६२ ई० से लेते हैं, जब कलश के नाममात्र के राज्याभिषेक के पश्चात् क्षितिराज ने संन्यास धारण कर लिया तथा कुछ समय के बाद उसने सान्त्वना देने के लिए राजा अनन्त से भेंट की। कुछ इसी तरह के विचार विल्हणकृत 'विक्रमाङ्कदेवचरित' में मिलता है, जहाँ कहा गया है कि उसका भाई लोहरा के स्वामी वीर क्षितिपति भोज के ही समान यशस्वी थे।[६] 'विक्रमांकदेवचरित' के इस श्लोक को यदि 'राजतरंगिणी' के मन्तव्य

---

[१] (i) अलबेरूनी की **इण्डिका**, प्रो० सचाऊ का अनुवाद, भाग–१, पृ० १९१; रेऊकृत **राजा भोज**, पृ० ९८ में उद्धृत।
(ii) **ए०इ०**, भाग–१, पृ० २३२.

[२] (i) दिवप्रताप..........कवलीचकार।।
(ii) भोजक्ष्मापाल.............वाप शान्तिम्।।
– **विक्रमाङ्कदेवचरित**, १/९१, ९४.

[३] भोजक्ष्माभृत्स खलु.............सकरूणं व्याजहारेव धारा। – **विक्रमाङ्कदेवचरित**, १८/९६.

[४] **विक्रमाङ्कदेवचरित**, सम्पादक – वूहलर, पृ० २३.

[५] स च भोजनरेन्द्रश्च............कविबान्धवौ।। – **राजतरंगिणी**, ७/२५९.

[६] यस्य भ्राता क्षितिपतिरिति..........लोहराखण्डलोऽभूत्।। – **विक्रमाङ्कदेवचरित**, १८/४८.

के समर्थनस्वरूप देखा जाए तो भोज के राज्य की उत्तरी सीमा १०६२ ई० या उसके बाद मानी जा सकती है।

७. १३०४–०५ में पूर्ण होनेवाली मेरुतुङ्गाचार्य की कृति 'प्रबन्धचिन्तामणि' से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् १०७८ अर्थात् १०२१ ई० में भोजराज मालवप्रान्त पर शासन कर रहा था।[१] कतिपय विद्वानों की सम्मति है कि यद्यपि भोज ने ९९९ ई० में ही राज्य अपने अधीन कर लिया था, किन्तु उनका राज्याभिषेक १०२१ ई० में हुआ। शुभशील ने 'भोजप्रबन्ध' की भूमिका में भी १०७८ वि० संवत् को उनका राज्यारोहण स्वीकार किया है।[२] 'प्रबन्धचिन्तामणि' के 'मुञ्जराजप्रबन्ध' से पता चलता है कि भोज ने ५५ वर्ष, सात महिना तथा तीन दिनों तक राज्य किया था।[३] इतना हीं नहीं १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचित वल्लाल मिश्र कृत 'भोजप्रबन्ध' नामक ग्रंथ में भी उक्त अवधि वर्णित है।[४] दोनों ही ग्रन्थों में वर्णित अवधि को यदि भोज के ऐतिहासिक कालावधि (१००७–०८) के साथ जोड़कर देखा जाए तो भी भोज की कालावधि की उत्तरी सीमा १०६२ ई० ठहरती है।

८. अकबर के दरबारी अबुल फजल की रचना 'आइने अकबरी' के भाग दो में उदयपुर के राजाओं की सूची वर्णित है। इसमें भोज का राज्यारोहणकाल ९९७ ई० बताया गया है। लेसन की सूची का आधार भी 'आइने अकबरी' ही है।[५]

९. ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में माने जानेवाले 'शुक्लयजुर्वेद' की 'माध्यान्दिन संहिता' के भाष्यकार उव्वट ने अपने भाष्य की रचना भोज के शासनकाल में की थी, जिसका उन्होंने उल्लेख किया था।[६] अतः स्पष्ट है कि ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में भोज सिंहासनरूढ़ थे।

१०. 'अमरकोष' पर सर्वप्राचीन टीका सुभूतिचन्द्रकृत 'कामधेनु' टीका (१०६२ से ११७२ के मध्य) की हस्तलिखित प्रति तिब्बत के मठ में सुरक्षित है। इस टीका में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' एवं 'शृङ्गारप्रकाश' का उल्लेख मिलता है तथा यहाँ भोज की मृत्यु की तिथि १०६३ ई० अंकित है।[१]

---

[१] अथ (संवत् १०७८ वर्ष) यदा मालवकमण्डले श्रीभोजराजा..........। – **प्रबन्धचिन्तामणि**, दूसरा प्रकाश, पृ० ३३.

[२] विक्रमाद् वासरादष्ट..........निवेशितः। – **भोजप्रबन्ध**, पृ० ८.

[३] **प्रबन्धचिन्तामणि**, प्रथम प्रकाश, पृ० २८.

[४] पञ्चाशात्पञ्चवर्षाणि...........दक्षिणापथः। – **भोजप्रबन्ध**, श्लोक–६.

[५] **दी इण्डियन एण्टिक्वेरी**, भाग–६, पृ० ४९.

[६] आनन्दपुरवा.............भोजे पृथ्वी प्रशासति। – **काव्यप्रकाश**, भूमिका, पृ० ६४ से उद्धृत; काणे, **संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास**, पृ० ३४१; डे०, **संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास**, पृ० १३५.

११. काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट 'काव्यप्रकाश' के दशम उल्लास में उदात्तालंकार के विवेचन प्रसंग में भोज की दानशीलता की चर्चा करते हैं।[२] 'शृङ्गारप्रकाश' के मैसूर संस्करण में दो स्थलों पर 'काव्यप्रकाश' का शब्दशः उल्लेख मिलता है।[३] 'शृङ्गारप्रकाश' के आरम्भिक प्रतिज्ञा श्लोक में १० रसों की चर्चा[४]; नवें प्रकाश के अन्त में निर्दोषं गुणवद्यस्य ... दिविमोदते' कारिका में दोषहानता, गुणोपादानता एवं अलंकारयुक्तस्वरूप काव्य का कथन, जो कुछ इसी रूप में 'अग्निपुराण' में भी मिलता है;[५] १३वें प्रकाश में मम्मट के रसस्वरूप की अन्तिम पंक्ति यथा – 'व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः'[६] का उल्लेख आदि से एक प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होता है कि क्या 'शृङ्गारप्रकाश' की रचना करते समय शृङ्गारप्रकाशकार आचार्य भोज 'काव्यप्रकाश' से परिचित हो चुके थे? दूसरी ओर मम्मट भोज की दानशीलता एवं 'सरस्वतीकण्ठाभरण' से तो परिचित एवं प्रभावित दिखते हैं, किन्तु 'शृङ्गारप्रकाश' से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। 'काव्यप्रकाश' की रचना ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यकाल या कुछ बाद में मानी जाती है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक भोज के काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना शृङ्गारप्रकाश' से पूर्व हो चुकी थी। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का सम्भावित रचनाकाल ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य से पूर्व का रहा होगा तथा 'शृङ्गारप्रकाश' की रचना 'सरस्वतीकण्ठाभरण' तथा 'काव्यप्रकाश' के पश्चात् अर्थात् ११वीं शताब्दी के मध्य भाग के बाद हुई होगी। विशालकाय ग्रंथ होने के कारण इसकी रचना में अवश्य ही कुछ वर्ष लगे होंगे। इस दृष्टि से भोज का उत्तरकाल १०५० और उसके बाद का ही रहा होगा। फलतः १०६२ तथा उसके बाद की अवधि को उनकी उत्तरी सीमा मानना समीचीन प्रतीत होता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि पण्डितपरम्परा 'शृङ्गारप्रकाश' में 'काव्यप्रकाश' के उल्लेख को आक्षिप्त मानती है तथा किसी भी स्थिति में वे 'काव्यप्रकाश' को 'शृङ्गारप्रकाश' से पूर्व स्वीकार नहीं करती,

---

[१] **राजा भोज का रचनाविश्व**, पृ० ३०३.

[२] मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः................त्यागलीलायितम्।। – **काव्यप्रकाश**, उदाहरण संख्या–५०६.

[३] (i) संपर्को यथा, काव्यप्रकाशे –
'अलमतिचपल.............विस्मरत्यन्तरात्मा'।। – **शृङ्गारप्रकाश**, द्वितीय भाग, पञ्चदश प्रकाश, पृ० ५९६.
(ii) यथा काव्यप्रकाशे –
'कुलममलिनं.............तवांकुशाः'।। – **वही**, तृतीय भाग, चतुर्दश प्रकाश, पृ० ५९८.

[४] शृङ्गारवीरकरुणा...............शान्तनाम्नः। – **वही**, प्रथम भाग, प्रथम प्रकाश, पृ० १.

[५] (i) निर्दोषं गुणवद्यस्य सालङ्कारं करम्बितम्।
सतां वसति चेतस्सु वचस्स दिवि मोदते।। – **शृङ्गारप्रकाश**, द्वितीय भाग, नवम प्रकाश, पृ० ३७०.
(ii) काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणवद् दोषवर्जितम्। – **अग्निपुराण**, ३३७/७.

[६] व्यक्तस्स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसस्मृतः। – **शृङ्गारप्रकाश**, द्वितीय भाग, त्रयोदश अध्याय, पृ० ५५०.

किन्तु दोनों आचार्यों के ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भोज और मम्मट किसी न किसी प्रकार से परस्पर परिचित एवं एक दूसरे से प्रभावित रहे होंगे।

अन्य –

(i) नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तने ने मालवा से प्राप्त तीन अभिलेखों तथा अन्य सामग्रियों के आधार पर भोज का राज्यारोहण काल १००४ तथा भोज की मृत्यु १०५९ ई० बताया है।[१]

(ii) लेसन और हाल ने भोज का राज्यारोहणकाल ९९७ ई० बतालाया है।[२]

(iii) जी. व्यूह्लर ने भोज के शासन की उत्तरी सीमा १०६२ ई० बताया है।[३]

(iv) जयसिंह के मन्धाता अभिलेख के आधार पर कीलहार्न ने भोज के राज्यकाल की अधिकतम सीमा १०५५-५६ ई० सन् स्वीकार किया है।[४]

(v) डॉ०एस०के०डे० ने 'संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास'[५] नामक अपने ग्रन्थ में उज्जैन, बटमा, बाँसवाड़ा, सरस्वतीमूर्त्तिलेख, तिलकवाङा, मान्धाता आदि लेखों, अलबरूनी, विल्हण, कल्हण द्वारा वर्णित तथ्यों एवं व्यूह्लरादि के मतों के साथ-साथ कुछ अन्य अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर भोज का समय १०१० से १०५५ ई० निर्धारित करने का प्रयास किया है। उन्होंने इसे स्थूल रूप में ११वीं शती का प्रथम चरण, सम्पूर्ण द्वितीय चरण माना है तथा उनकी कहना है कि वे सम्भवतः उसी सदी के तृतीय चरण में भी जीवित रहे होंगे। डॉ० डे० के विचार का कुछ प्रमुख आधार इस प्रकार हैं –

(अ) उनका मानना है कि भोज के उद्धृत करनेवाले प्राचीनतम आचार्य सम्भवतः १२वीं शती के पूर्वार्द्ध माने जाने वाले आचार्य हेमचन्द्र हैं। साथ ही ११४० ई० के पश्चात् अपना लेखनकार्य आरम्भकरनेवाले वर्धमान ने 'गणरत्न' के दूसरे पद्य में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के रचयिता भोज का उल्लेख किया है। अतः स्पष्ट है कि भोज का समय १२वीं शताब्दी से पूर्व रहा होगा।

(आ) डे० महोदय का विचार है कि भोज द्वारा उल्लिखित सर्वाधिक प्राचीन आचार्य राजशेखर हैं। राजशेखर का काल १०वीं शताब्दी का प्रारम्भिक भाग माना जाता है। इसके आधार पर उनका कहना है कि भोज इसी के बाद हुए होंगे। जहाँ तक 'चौरपंचाशिका' के पद्यों का 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में

---

[१] **दी इण्डियन एण्टिक्वेरी**, भाग-६, पृ० ५१.

[२] **वही**, पृ० ४९.

[३] **ए०इ०**, भाग-१, पृ० २३३.

[४] **ए०इ०**, भाग-३, पृ० ४८.

[५] डे०, **संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास**, पृ० १२३-१२५.

उद्धृत होने की बात है तो डॉ०डे०एवं काणे दोनों ही आचार्य स्वीकारते हैं कि 'चौरपञ्चाशिका' को विल्हण की कृति मानना सन्देहास्पद है। इसके अतिरिक्त भोज ने अपने पूर्ववर्ती वाक्पतिमुञ्ज के एक पद्य का उल्लेख 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में किया है तथा मुञ्ज के दरबारी धनञ्जय द्वारा रचित 'दशरूपक' का १६ बार और इसके साथ ही 'अवलोक' टीका के उद्धरण भी यहाँ उद्धृत हैं। अत: स्पष्ट है कि 'सरस्वतीकण्ठाभरण' एवं 'शृङ्गारप्रकाश' की रचना इन ग्रंथों के बाद हुई होगी।

(vi) पी०वी० काणे ने अपने 'संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास'[१] में विभिन्न अभिलेखीय, साहित्यिक, ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि भोज १००५ के लगभग गद्दी पर बैठा, उससे पूर्व नहीं। मान्धाता शिलालेख के आधार पर उनका कहना है कि भोज १०५४ के बाद जीवित नहीं रहा होगा। उनकी दृष्टि में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' और शृङ्गारप्रकाश' की रचना १००५ से १०५४ के बीच में सम्भवत: भोज के राज्यकाल के अन्त में अर्थात् १०३० से १०५० के मध्य हुई होगी।

(vii) विश्वेश्वरनाथ रेउ के 'राजा भोज'[२] नामक पुस्तक के अनुसार भोज की मृत्यु निश्चय ही १०४२ ई० और १०५५ ई० के मध्य कलश के राज्य पर बैठने और विल्हण के कश्मीर चलने से पूर्व ही हो चुकी थी।

निष्कर्ष–

अभिलेखीय, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त सामग्रियों के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि १००५ से १०१० ई० के मध्य भोज सिंहासनरुढ़ हुए होंगे, सम्भवत: वह अवधि १००७-०८ रही होगी तथा उनके शासन काल की उत्तरी सीमा १०६३ मानी जा सकती है। १०६३ या इसके शीघ्र बाद ही सम्भवत: भोज की मृत्यु हुई होगी। फिर भी स्थूल रूप में ग्यारहवीं शताब्दी का (पूर्व, मध्य एवं कुछ उत्तरपूर्व का) काल परमारवंशीय भोज का काल माना जाता है।

संदर्भग्रन्थसूची

- ***अग्निपुराण***, व्याख्याकार - द्विवेदी, आचार्य शिवप्रसाद, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००४.

[१] काणे, **संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास**, पृ० ३२६.

[२] रेउ, विश्वेश्वरनाथ, **राजा भोज**, पृ० १०२.

- ***चम्पूरामायण***, भोज, सम्पा० – शास्त्री, लक्ष्मण पणिक्कर, व्या० – बुधेन्द्र, रामचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८२.
- ***प्रबन्धचिन्तामणि***, आचार्य मेरूतुङ्ग, सम्पा० – जिनविजय मुनि, अनु० – द्विवेदी, पं० हजारीप्रसाद, सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, कलकत्ता, १९४०.
- ***भोजप्रबन्ध***, वल्लालसेन, व्या० – शर्मा, पं० केदारनाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २०१८ सम्वत् (१९६१ ई०).
- ***शृङ्गारप्रकाश***, महाराजा भोज, सम्पा० – जोशयेर, जी.आर., दि कोरोनेशन प्रेस, मैसूर

  प्रथम भाग (१–८ प्रकाश), १९५५.
  द्वितीय भाग (९–१४ प्रकाश), १९६३.
  तृतीय भाग (१५–२४ प्रकाश), १९६३.
  चतुर्थ भाग (२५–३६ प्रकाश), १९७४.
- ***शृङ्गारप्रकाश***, महाराजा भोज, सम्पा० – द्विवेदी, महामहोपाध्याय रेवाप्रसाद, इन्दिरागाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली तथा कालिदाससंस्थान, वाराणसी
  भाग एक (१–१४ प्रकाश), प्रथम संस्करण २००७.
  भाग दो (१५–३६ प्रकाश), प्रथम संस्करण २००७.
- ***सरस्वतीकण्ठाभरण***, (रत्नेश्वरमिश्रकृत 'रत्नदर्पण' व्याख्यासहित), भोजदेव, व्या० – मिश्र, कामेश्वर नाथ, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी
  प्रथम भाग (१–२ परिच्छेद), प्रथम संस्करण, १९७६.
  द्वितीय भाग (३–५ परिच्छेद), प्रथम संस्करण, १९९२.
- अवस्थी, श्रीपति, ***भारत के प्रसिद्ध अभिलेख***, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००७.
- काणे, पी.वी., ***संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*** (अनु० – शास्त्री, इंद्रचन्द्र), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६६.
- कृष्ण कुमार, ***अलङ्कारशास्त्र का इतिहास***, साहित्य भण्डार, मेरठ, प्रथम संस्करण, १९७५.
- डे, सुशील कुमार, ***संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*** (अनुवादक – शर्मा, श्रीमायाराम), बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादेमी, पटना, प्रथम संस्करण, १९७३.
- त्रिपाठी, गंगाधर, ***रुय्यक की साहित्यमीमांसा – एक अध्ययन***, न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००४.

- द्विवेदी, रेवाप्रसाद, ***संस्कृत-काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास***, कालिदास- संस्थान, वाराणसी, २००७.
- महाजन, वी.डी., ***प्राचीन भारत का इतिहास***, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, १९९२.
- राघवन्, वी., ***भोजकृत शृङ्गारप्रकाश*** (अनुवादक - अग्निहोत्री, प्रभुदयाल), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९८१.
- राघवन्, वी., ***रसों की संख्या*** (अनुवादक - मिश्र, राजेन्द्र), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, २००७.
- राजपुरोहित, भगवती लाल, ***राजा भोज का रचना विश्व***, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, १९९०.
- वर्मा, हरिशचन्द्र (सम्पादक), ***मध्यकालीन भारत (खण्ड-१),*** हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, १९८३.
- शास्त्री, नीलकण्ठ, ***दक्षिण भारत का इतिहास,*** बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण, १९७२.
- श्रीवास्तव, कुमारी करुणा, ***चम्पू रामायण का साहित्यिक परिशीलन***, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९६८.
- श्रीवास्तव, के.सी., ***प्राचीन इतिहास तथा संस्कृति***, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, १९९७.
- Raghavan, V., ***Studies on Some Concepts of the Alaṅkara Śāstra***, The Adyar Library, Adyar, 1942.
- Raghavan, V., ***Number of Rasas***, The Adyar Library, Adyar, 1940.
- Raghavan, V., ***Bhoja's Śṛṅgāra Prakāśa***, Punarvasu Publication, Madras, Second edition, 1963.
- Aufrecht, Theodar, ***Catalogues Catalogorum***, Leipzig, Part I, 1891; Part II, 1896; Part III, 1903.
- ***Epigraphica Indica***, Vol. I, 1892; Vol. II, 1894; Vol. III, 94-95; Vol. IX, 1907-08; Vol. XI, 1911-12; Vol. XVIII, 1925-26; Vol. XX, 1929-30; Vol. XXIV 1937-38.
- ***Indian Antiquary***, Vol. VI, 1877; Vol. XIX, 1890; Vol. XLI, 1912; Vol. XLII, 1913.